सत्यार्थप्रकाश शताब्दी के अवसर पर अनुपम भेंट

सत्यार्थ-मणिमाला

(सत्यार्थ प्रकाश की १०० प्रेरक सूक्तियों का संग्रह)

सम्पादक :
आचार्य प्रेमभिक्षु वानप्रस्थ

प्रकाशक :
सत्य प्रकाशन, मथुरा

मूल्य)८० पैसा

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी के अवसर पर अनुपम भेंट

सत्यार्थ-मणिमाला

(सत्यार्थ प्रकाश की १०० प्रेरक सूक्तियों का संग्रह)

सम्पादक :
आचार्य प्रेमभिक्षु वानप्रस्थ

प्रकाशक :
सत्य प्रकाशन, मथुरा

वैदिक पुस्तकालय मुम्बई मूल्य) पैसा
9869128779

महर्षि तुम जहान को महान दान दे गये

—श्री लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र'

महर्षि तुम जहान को महान दान दे गये।

जब कि पोप पन्थ ने, समस्त विश्व घेरकर,
विनाश व्यूह था रचा, स्वशक्ति सब बटोर कर,
तभी स्वधर्म रक्षिता नई कृपाण दे गये।
महर्षि तुम जहान को महान् दान दे गये।

पछाड़ पोप पन्थ को, उखाड़ ढोंग को दिया,
उजाड़ अन्ध ज्ञान को उबार धर्म को लिया,
विलीन वेद-ज्ञान को, नवीन प्राण दे गये।
महर्षि तुम जहान को महान दान दे गये।

'सत्यार्थ' के प्रकाश से नया प्रकाश कर गये,
तमिस्र विश्व में अपार ज्योति राशि भर गये,
अनादि ज्योति का प्रदीप, दीप्तिमान दे गये।
महर्षि तुम जहान को महान दान दे गये।

मृतः प्राय राष्ट्र को, ऋषे! तुम्हीं जिला गये,
स्वयं विषम गरल पिया, हमें सुधा पिला गये,
मनुष्य मात्र के लिए अमूल्य प्राण दे गये।
महर्षि तुम जहान को महान् दान दे गये।

स्वधर्म मूल्य आंक कर, ऋषे! तुम्हीं बता गये,
स्वराज्य का सुमन्त्र नव, तुम्हीं प्रथम सिखा गये,
जगा स्वदेश जाति को नया विहान दे गये।
महर्षि तुम जहान को महान दान दे गये।

पथ प्रदर्शक—मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय से पाया है। मार्ग से भटकने वालों के लिए यह सच्चा पथ प्रदर्शक है।' –सी० एफ० एण्ड्रयूज

ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश महान् !

—श्री पं० ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री

ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश महान् ।
जयति जय ऋषिवर का वरदान ॥
विश्व के ग्रन्थों का सरताज, बहारों का मानो ऋतुराज।
बचाई मानवता की लाज, किया है तर्कों का आधान । १ ॥
दयामय आनन्दों का स्रोत, ज्ञान गरिमा से ओतः प्रोत।
मतों के सागर का दृढ़ पोत, कर रहा जगती का कल्याण ॥
स्व-संस्कृति सरणी का पाथेय, धरातल में ध्रुत सा ध्रुव ध्येय।
विचारों का यह दुर्ग अजेय जहाँ पर रक्षित वैदिक ज्ञान । ३ ॥
ईश का सुन्दर सत्य स्वरूप, समुज्वल शिक्षा का प्रारूप ।
अध्ययन क्रम का नियम अनूप, गृहस्थाश्रम का वरद विधान ।४।
सुशोभित वानप्रस्थ, संन्यास राजधर्मों का विमल विकास ।
ईश के वेदों का विन्यास, सृष्टि का सुन्दरतर आख्यान । ५ ॥
अविद्या विद्या, मोक्ष-विचार, सुभक्ष्याभक्ष्य विदित आचार ।
प्रभावित जिससे है संसार, मुक्तिमय प्रामाणिक व्याख्यान । ६ ॥
मतों के आलोचन का सार, नास्तिकी मत पर विशद् विचार।
ईसवी मत पर प्रबल प्रहार, यावनी मत का शल्य निदान । ७ ॥
महर्षि ने करके श्रम साकार, भरा है घट में उदधि अपार ।
'रत्न' उल्लासों का यह हार कर रहा आलोकित उद्यान । ८ ।
महर्षि के मन्तव्यों का चित्र, अन्त में अविकल निखिल पवित्र।
धरा में सबसे यही विचित्र, प्रशंसित है विवेक की खान । ९ ॥
धर्म का धवल यही आधार, वेद के परिचय का आकार।
इसी का करिये प्रचुर प्रचार, जगत् में हो ऋषि जय का गान ॥

❀

है सत्यार्थ प्रकाश हमारा

प्राणों से भी बढ़कर प्यारा, है सत्यार्थ प्रकाश हमारा ।
मोह महातम हरने वाला, ज्ञान-उजाला करने वाला ॥
भव्य भावना भरने वाला, दिव्य-ज्योति का स्रोत सितारा । है०
वैदिक पाठ पढ़ाने वाला, गत गौरव गुण गाने वाला ।
फिर से सतयुग लाने वाला, दयानन्द ऋषि का चखतारा ॥ है०
शुभ सन्मार्ग सुझाया इसने, बुद्धिवाद उमगाया इसने ।
गुरुडम का गढ़ ढाया इसने, जग में निर्भय भाव प्रचारा ॥ है०
सोता देश जगाया इसने, प्रेम-प्रवाह बहाया इसने ।
स्वावलम्ब सिखलाया इसने, सत्य धर्म को है विस्तारा ॥ है०
कोटि-कोटि जनता का जीवन, अर्पित है इस पर समोद मन ।
त्यागी, सुधी, साधुओं का धन, मानवता का सबल सहारा ॥है०
वैदिक धर्म-ध्वजा फहरावें, बलिवेदी पर शीश चढ़ावें ।
मरते-मरते गाते जावें. अजर अमर अक्षय ध्रुवतारा ॥ है०
इस पर आँच न आने पावे, चाहे जान भले ही जावे ।
जग में ओम् ध्वजाफहरावें, तब होवे प्रण पूर्ण हमारा ॥ है०

सचाइयों से भरी पुस्तक

स्व० पण्डित गुरुदत्त एम० ए०--मैंने सत्यार्थ प्रकाश को न्यून से न्यून १५ बार पढ़ा है। जितनी बार इसको पढ़ता हूँ मुझे तन मन तथा आत्मा के लिए कुछ नया आनन्द प्राप्त होता है। पुस्तक गूढ़ तत्वों और सचाइयों से भरी हुई है।"

सत्यार्थ-प्रकाश विषयक

अप्रकाशित पांच श्लोक

सत्यार्थ-प्रकाश (संवत् १९३२ वि०) की कापी में ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश की रचना के सम्बन्ध में(जैसे ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि में है) पांच श्लोक एक पत्रे पर लिखे हुए उपलब्ध हुए हैं। जो सम्भव है भूल से प्रथम संस्करण में छपने से रह गये थे, और इसी कारण द्वितीयसंस्करण में भी नहीं छपे। वे श्लोक इस प्रकार हैं:

दयाया आनन्दो विलसतिपरः स्वात्मविदितस् ।
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यशरणा ।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रिपरमा ।
सको दान्तश्शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः ॥१॥

सत्यादर्थप्रकाशाय ग्रन्थस्तेनैव निर्मितः ।
वेदादिसत्यशास्त्राणां प्रमाणैर्गुणसंयुतः ॥२॥

विशेषभागीह वृणोति यो हित ।
प्रियोऽत्र विद्यां सुकरोति तात्त्विकीम् ।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया ।
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥३॥

न ततः फलमस्ति हितं विदुषो
ह्यधिकं परमं सुलभन्नु पदम् ।
लभते, सुयतो भवतीह सुखी
कपटी सुसुखी भविता (हि) न सः ॥४॥

धर्मात्मा विजयी स शास्त्रशरणो विज्ञानविद्यावरो ।
ऽधर्मेणैव हतो विकारसहितोऽधर्मस्सुदुःखप्रदः ।
येनाऽसौ विधिवाक्यमानमनसा पाखण्डखण्डः कृतः ।
सत्यं यो विदधातिशास्त्रविहितन्धन्योऽस्तु तारब्धि सः॥५॥

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश की शताब्दी के अवसर पर मननीय, आचरणीय और प्रचारणीय

सत्यार्थ सुधा-सार

प्रथम समुल्लास—ईश्वर एक है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, महादेव, नारायण, गणेश, देवी आदि अलग २ देवी-देवता नहीं हैं। (एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति) ये सब एक ही निराकार ईश्वर के विभिन्न नाम हैं, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, ईश्वर का मुख्य और निज नाम ओम् है।

द्वितीय समुल्लास—'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' (शतपथ) के इस वचन के अनुसार मानव निर्माण की नींव बचपन के पहले पांच सालों में माता-पिता की देख-रेख में पड़ती है। गुरु उन्हें बाद में शिक्षा देकर पुष्ट करता है।

तृतीय समुल्लास—शिक्षा सम्पूर्ण, व्यापक एवं सर्वांगीण होना चाहिए। वेदादि का ज्ञान प्रत्येक के लिए अनिवार्य होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान पढ़ना भी जरूरी है। आदर्श शिक्षा से युक्त आदर्श ब्रह्मचारी ही आदर्श सद्गृहस्थ, आदर्श नागरिक और राजनेता बन सकता है। चरित्र निर्माण शिक्षा का लक्ष्य है।

चतुर्थ समुल्लास—विवाह संयमित और योगमय जीवन की नींव डालता है, भोग की नहीं। गृहस्थ का उत्तरदायित्व सबसे बड़ा है अतः गृहाश्रम सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आश्रम है। गृहस्थ के कुछ निश्चित कर्त्तव्य है। उनका पालन एक सद्गृहस्थ का 'स्वधर्म' है गृहाश्रम समाज की एक मात्र धुरी है, आदर्श गृहाश्रम ही वेदोक्त 'स्वर्ग' है। वर्ण व्यवस्था का आधार गुण-कर्म स्वभाव है, जन्म नहीं। आश्रम व्यवस्था मानव-निर्माण का मूलाधार है।

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

पंचम समुल्लास—संन्यासी बनने का अधिकार हर किसी को नहीं है। संन्यासी समाज का सबसे योग्य मार्गदर्शक होता है। वानप्रस्थी घर की चिन्ता से ऊपर उठकर अपनी आत्मिक उन्नति और समाज की सर्वात्मना उन्नति में लगता है। वर्णाश्रम धर्म वैदिक धर्म का सार सर्वस्व है।

षष्ठ समुल्लास—आदर्श मानव ही आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। वैदिक आदर्श का राजा प्रजा की सर्वसम्मति से चुना जाता है। वह जनता के योग्यतम प्रतिनिधियों की सभा और समिति के सहयोग से राज्य चलाता है। राजा सदाचारी, संयमी परमशूर एवं अत्यन्त प्रबुद्ध होना चाहिए।

सप्तम समुल्लास-वेद ही सच्चा ईश्वरीय ज्ञान है।वेद चार हैं चारों वेदों में पशुहिंसा परक एक भी मन्त्र नहीं है। वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों नित्य हैं। ईश्वर सत् चित् आनन्द है 'जीव सत् चित्' है प्रकृति केवल सत् है।प्रकृति साधन है,जीवात्मा साधक और परमात्मा साध्य। प्रकृति के साधन द्वारा जीवात्मा का परमात्मा को प्राप्त करना ही साधना या प्रभुभक्ति का मुख्य लक्ष्य है।

अष्टम समुल्लास—सृष्टि रचना एक नित्य प्रक्रिया है। सृष्टि की रचना में प्रेरणा ईश्वर देता है। प्रकृति पंच महाभूतात्मक है सृष्टि रचयिता को पाने के लिए उसकी रचना-सृष्टि के रहस्यों (विज्ञान) को जानना आवश्यक है।

नवम समुल्लास—आत्मा (जीव) नित्य है। वह कर्म करने में स्वतन्त्र, किन्तु फल भोगने में ईश्वराधीन है। जन्म-मरण का क्रम अनिवार्य है। 'मुक्ति' सदा एक कालसीमा तक रहती है। उसके पश्चात् जीवात्मा पुनः संसार में आता है। जगत् में बंधन और मोक्ष अपने हाथ है।

दशम समुल्लास—सदाचार जीवन की उन्नति का मूल मंत्र

है । मांस भक्षण,सुरापान,नशा और जुआ आदि पतन के कारण हैं । खान-पान की पवित्रता से ही राष्ट्र शुद्ध आचार वाला बनता है । स्वधर्म,स्व-संस्कृति, स्व-भाषा शुद्ध आहार और स्वदेशी भेष अपना कर ही हम सच्चा 'स्वराज्य' ला सकते हैं ।

एकादश समुल्लास—भारत में जितने मत-मतान्तर-शैव-शाक्त-वैष्णव आदि हैं,वे वेद की शिक्षा को ठीक से न समझने के कारण हैं । वेद-विरुद्ध मतों को छोड़कर हमें वेदानुकूल बातें ही अपनानी चाहिए । 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'

द्वादश समुल्लास–चार्वाक आदि अनीश्वरवादी भारत में भी हो गये थे । बौद्ध एवं जैनमत मूलतः वैदिक होते हुए भी इससे प्रभावित हुए हैं । हमें आज भी बढ़ती हुई नास्तिकता और अवैदिकता से सावधान होने की आवश्यकता है ।

त्रयोदश समुल्लास– ईसाई मत में कुछ मूल बातें वेदानुकूल हैं । अन्य सभा वेद विरुद्ध बातों को हमें त्याग देना चाहिए ।

चतुर्दश समुल्लास—कुरान में भी वेदानुकूल कुछ बातें हैं । शेष वेद विरुद्ध बातों को त्याग देना चाहिये–**श्रीमेलाराम दिल्ली**

संशोधक–**आचार्य प्रेमभिक्षु, सम्पादक 'तपोभूमि' मथुरा**

वितरक–**श्रीपुष्करलाल आर्य** प्रधान आर्यसमाज हावड़ा
१२१,कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता–७ के सौजन्य से प्रकाशित

ध्येय वाक्य—व्यक्ति-व्यक्ति के आर्यकरण और परिवारों के वैदिकीकरण से ही आर्यसमाजोदय होगा,आर्यसमाजोदय से ही भारतोदय होगा और भारतोदय से ही विश्वोदय होकर देव दयानन्द के दिव्य स्वप्न साकार होंगे ।

दिव्य उद्घोष—हम बदलेंगे : जग बदलेगा । हम सुधरेंगे : जग सुधरेगा । दुर्गुण त्यागें: सद्गुण धारें । वैदिकपरिवार बनायेंगे : धरती पर स्वर्ग सजायेंगे । आर्यसमाज अमर है । वेद की ज्योति जलती रहे । जो आचारे सो अभय । वैदिक धर्म की जय ।

भूमिका

१. **ग्रन्थकार का उद्देश्य**–मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य-सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। × × जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। × × मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ-दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर। (यही इस ग्रन्थ निर्माण का उद्देश्य है) क्योंकि सत्योपदेश के बिना कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

२. **सर्वतन्त्र सिद्धान्त**–यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं। वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवें।

३. **सत्यमेव जयते नानृतम्**–'सत्येन पन्था विततो देवयानः' अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।

४. **ग्रन्थकार का विश्व प्रेम**–यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथा तथ्य प्रकाश

करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मत वालों के साथ भी वर्त्तता हूँ। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है।

प्रथम समुल्लास

५. ओम् की संक्षिप्त व्याख्या–यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे–अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

६. ईश्वर एक है, अनेक नहीं–(वह) सब जगत् के बनाने से 'ब्रह्मा' सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु' दुष्टों को दण्ड देने रुलानेसे 'रुद्र' मङ्गलमय और सबका कल्याण कर्त्ता होने से शिव और काल का भी काल है। इसलिए परमेश्वर का नाम 'कालाग्नि' है। × × जो एक अद्वितीय, सत्य ब्रह्म वस्तु है, उसी के इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् और मातरिश्वा आदि ये नाम हैं।

परन्तु ओ३म् यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है। और अग्नि आदि नामों से ग्रहण होता है।

७. एक मात्र उपास्य देव–स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके

तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उस से अधिक क्यों कर सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें।

८. **मंगलाचरण कैसा होना चाहिए ?**–जो न्याय पक्ष-पात रहित सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्ति पर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना, इसलिए 'ओ३म्' वा 'अथ' शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहि ।

द्वितीय समुल्लास

९. **भाग्यवान् सन्तान**–'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्! जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों।

१०. **माता की महत्ता**–जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसीलिए (मातृमान्) अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्' धन्य वह माता

है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

११. पांच वर्ष तक माता द्वारा शिक्षा–बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पृष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न भिन्न श्रवण होवे।

१२. पिता द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा–जब पांच २ वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा-प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त्त के बहकाने में न आवें और जो विद्या धर्म विरुद्ध भ्रान्ति जाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दें जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

१३. ग्रहों का फल मिथ्या है–प्रश्न : क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है? **उत्तर** : नहीं ये सब पाप पुण्यों के फल हैं। **प्रश्न** : तो क्या ज्योतिः शास्त्र झूठा है? **उत्तर** : नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।

१४. वीर्य की महिमा– देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुल क्षणी और जिसको प्रमेह रोग होताहै वह दुर्बल,निस्तेज निर्बुद्ध, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृह-कर्मों के करने वाले जीते हैं, तभी तक तुमको विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए।

१५. सन्तान का लाड़न और ताड़न—उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं।

१६. प्रतिज्ञा पालन–जैसी हानि प्रतिज्ञा को मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूँगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूँगा' इसको वैसे ही पूरी करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिये सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञा युक्त सबको होना चाहिए।

१७. सामान्य व्यवहार की शिक्षा–क्रोधादि दोष और

कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिए उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे, उनके सामने उठकर जाके उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे, उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे। सज्जनों का सङ्ग और दुष्टों का त्याग, अपने माता-पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे।

१८. शत्रु माता तथा वैरी पिता–

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

यह किसी कवि का वचन है। वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं, जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता-पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा-युक्त करना।

तृतीय समुल्लास

१९. सच्चे आभूषण –सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने चाँदी, मणिक, मोती, मूँगा, आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता।

२०. धन्य नर-नारि—

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दरशील स्वभाव युक्त सत्यभाषणदि नियम पालनयुक्त और जो अभिमान अपवित्रता से रहित, अन्य मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं।

२१. **पाठशाला में भेजने का समय**–आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें।

२ . **सन्तानों की शिक्षा कैसी हो**–जो अध्यापक पुरुष व स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथा-योग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य कुल अर्थात् अपनी अपनी पाठशाला में भेज दे, विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोष एक दूसरे से दूर होनी चाहिए जो वहां अध्यापिका और अध्या-पक पुरुष व भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहे। स्त्रियों की पाठ-शाला में पांच साल का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच साल की लड़की भी न जाने पावे। × × पाठशाला से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहे। सबको तुल्य वस्त्र खान पान आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार

व राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।

२३. **शिक्षा की अनिवार्यता**–इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवें वा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके पाठशाला में अश्वय भेज देवे जो न भेजे वह दण्डनीय हो।

२४. **यज्ञोपवीत कब हो ?**–प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में, आचार्य कुल में हो।

२५- **स्नान और सन्ध्योपासन**–गायत्री-मन्त्र का उपदेश करके संध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणामाम आदि क्रिया हैं, सिखलावें। प्रथम स्नान इसलिये है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना।

२६. **सन्ध्योपासन को रीति**–सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्म-यज्ञ भी कहते हैं। 'आचमन' उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठ-स्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् 'मार्जन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गा पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे पुनः समन्त्रक प्राणा-याम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। 'पश्चात् अघमर्षण' अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे।

दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानों का सङ्ग

सेवादिक से होता है।' 'सन्ध्या और अग्निहोत्र सांय प्रातः दो ही काल में करे दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे,जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे, तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है।

२७. **ब्रह्मचर्य का काल और विवाह का समय**—जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे अर्थात् ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिए, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकें तो भले ही रहे, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

२८. **क्या स्त्री और शूद्र भी वेदों को पढ़ें ?**

प्रश्न : क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ?

उत्तर : सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है।

प्रश्न : क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें ?

उत्तर : अवश्य, देखो श्रौत सूत्रादि में–'**इमं मन्त्र पत्नी पठेत्**' अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े, जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होंवे तो यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषण रूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थी, यह शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है ।

चतुर्थ समुल्लास

२९. **विवाह दूरस्थ कन्या से हो** : दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिए ।

३०. **विवाह में वर कन्या को स्वतन्त्रता** : लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है । जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है । विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है माता पिता का नहीं ।

३१. **वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से** : जो २ पुरुषों के उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग करना सबको अत्यावश्क है । जो कोई रज वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच,अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते ? यहां यही कहोगे कि उसनें ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे

तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

३२. **वर्ण व्यवस्था के निर्णय की अवस्था :** यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए तभी अपने २ वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथा-योग्य रहेगी।

३३. **तर्पण जीवितों का होता है :** जिस २ कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जाँय उसका नाम तपर्ण है, परन्तु यह जीवितों के लिए है मृतकों के लिये नहीं।

३४. **श्राद्ध और तर्पण की व्याख्या :** जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून हों उनका भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है उनके सदृश उनको विदुषी स्त्री ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना है उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है।

३५. **गृहाश्रम में पाँच महायज्ञों का फल :** इन पाँच महा यज्ञों का फल यह है कि ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि। अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु के श्वास स्पर्श खान पान से आरोग्य बुद्धि बल पराक्रम बढ़ के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना इसलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं कि यह वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर देता है। पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानो महात्माओं की

सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा उससे सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है उसका बदला देना उचित ही है। बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्व कह आये वही है। जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना अतिथियों के सन्देह निवृत्ति नहीं होती। सन्देह निवृत्ति के बिना दृढ़ न-श्चय भी नहीं होता, निश्चय बिना सुख कहां ?

३६, पति पत्नी परस्पर प्रेम से रहें : यही निश्चय जानना कि जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव भाव, नख-शिखाग्र पर्यन्य जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरे के अधीन हो जाता है। स्त्रीवा पुरुष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्य-वहार न करें।इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वैश्या परपुरुष गमनादि काम हैं इनको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

३७. गृहाश्रम महिमा : जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशं-सनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

पञ्चम समुल्लास

३८. वानप्रस्थी एवं सन्यासी होने का समय

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ।। मनु०६। ३३।।

वन में आयु को तीसरा भाग अर्थात् पच्चासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् सन्यासी हो जावे । **प्रश्न** : गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके सन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है वा नहीं ? **उत्तर** : होता है और नहीं भी होता । **प्रश्न** : यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो । **उत्तर** : दो प्रकार की नहीं क्योंकि जो बाल्यावस्था में विरक्त होकर विषयों में फँसे वह महापापी और जो न फँसे वह महापुण्यात्मा सत्यपुरुष है ।

३९. सन्यासियों का विशेषधर्म–इसी प्रकार से धीरे २ सब सङ्गदोषों को छोड़ हर्ष शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है ।

४०. ब्राह्मण को ही सन्यास का अधिकार है–प्रश्न: सन्यास ग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादि का भी ? **उत्तर** : ब्राह्मण ही को अधिकार है, क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान् धार्मिक परोपकार प्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मणनाम है बिना पूर्ण विद्या के धर्म,परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता। इसलिए लोकश्रुति है कि ब्राह्मण को सन्यास का अधिकार है ।

षष्ठम समुल्लास

४१. किसी एक को राजा न बनाना चाहिए—एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो

सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

४२. **योग्यतानुकूल अधिकार देना चाहिए**—महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी, धार्मिक, विद्वानों को धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हों उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।

४३. राजा और रानी अपराध करें तो कौन दण्ड दे ?

प्रश्न : जो राजा व रानी अथवा न्यायाधीश का उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उसको कौन दण्ड देवे ? **उत्तर** सभा अर्थात् उनको तो प्रजा पुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिए।

४४. **कड़ा दण्ड देना अनुचित नहीं है-प्रश्न** : यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा व जिलानेवाला नहीं है इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिए **उत्तर** : जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सबके भाग में न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें।

४५. **संस्कृत में राजनीति पूरी है-प्रश्न** : **संस्कृतविद्या में** पूरी २ राजनीति है वा अधूरी ? **उत्तर** : पूरी है क्योंकि जो २ भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्या से ली है।

सप्तम समुल्लास

४६. वेद में ईश्वर अनेक हैं या एक ?—प्रश्न : वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं ? **उत्तर** : नहीं , क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है । **प्रश्न** वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं, उसका क्या अभिप्राय है ? **उत्तर** : देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसा कि पृथिवी,परन्तु इसको कहीं ईश्वर व उपासनीय नहीं माना है।

४७. परमेश्वरकैसा है ? : प्रश्न : ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेष में रहता है ? **उत्तर** : व्यापक है क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता, अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का असम्भव है ।

४८. ईश्वर साकार है या निराकार ? : प्रश्न : ईश्वर साकार है व निराकार ? **उत्तर** : निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन, आदि से रहित नहीं हो सकता इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है ।

४९. सगुण और निर्गुण उपासना : सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित होना निर्गुणोपासना कहाती है ।

५०. ईश्वर अवतार नहीं लेता : प्रश्न : ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ? **उत्तर** : नहीं क्योंकि 'अज एकपात्' 'सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्' ये यजुर्वेद के वचन हैं इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

५१. ईश्वर पाप क्षमा करता है या नहीं : प्रश्न : ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ? **उत्तर** : नहीं क्यों कि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये जैसे राजा अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक२ बड़े२ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमाकर देगा और उनको भी भरोसाहो जाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टाकर अपने अपराध छुड़ा लेगें और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेगें। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं।

५२. जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र ? प्रश्न : जीव स्वतन्त्र है वा परतंत्र ? **उत्तर** : अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था परतन्त्र है 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' यह पाणिनोय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर को व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

५३. जीव और ब्रह्म एक नहीं–ब्रह्म का सहचारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं।

५४. वेदों का प्रकाश कब और किन को हुआ ?
उत्तर : अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ।
शत० ११।४।२।३।।

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया ।

५५, वेद ईश्वरकृत ही हैं इसमें क्या प्रमाण ? प्रश्न : वेद ईश्वरकृत हैं अन्य कृत नहीं इसमें क्या प्रमाण ? **उत्तर :** जैसा ईश्वर, पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत अन्य नहीं और जिसमें सृष्टि क्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्ति रहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त, जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि क्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर सृष्टिकार्यकारण और जीव का प्रतिपादन जिसमेंहोवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो इस प्रकार के वेद हैं, अन्य बाइबल,कुरान आदि पुस्तकें नहीं । इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरान के प्रकरण में तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी ।

५५. ऋषि मंत्रकर्त्ता नहीं अर्थ प्रकाशक हैं—
ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान्सम्प्राददुः ।। निरु० १ ।२० ।।

जिस २ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिये अद्या-

वधि उस २ मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावे उनको मिथ्यावादी समझें, वे तो मन्त्रों के अर्थ प्रकाशक हैं।

५६. वेद किनका नाम है ? प्रश्न : वेद किन ग्रन्थों का नाम है ? **उत्तर** : ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्र संहिताओं का, अन्य का नहीं।

आठवां समुल्लास

५७. ब्रह्म, जीव, और प्रकृति अनादि हैं—प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भोग करता है।

५८. बीज पहले है या वृक्ष—प्रश्न : बीज पहले हैं वा वृक्ष, **उत्तर** : बीज, क्योंकि बीज, हेतु, निदान निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थं वाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

५९. सर्व शक्तिमान् का अर्थ—सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

६०. जग का कर्त्ता अवश्य है—बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं, हो सकते और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता।

६१. पहले मनुष्य पैदा हुए या पृथ्वी ? प्रश्न : मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथिवी आदि की ? **उत्तर** : पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

६२. सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य की अवस्था क्या थी ? प्रश्न : आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्या, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? **उत्तर** : युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती इसलिए युवावस्था में सृष्टि की है।

६३. सृष्टि अनादि है—प्रश्न : कभी सृष्टि का आरम्भ है वा नहीं ? **उत्तर** : नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है इसकी आदि वा अन्त नहीं किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है।

६४. आदि सृष्टि कहाँ हुई ? प्रश्न : मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ? **उत्तर** : त्रिविष्टप अर्थात् जिसको 'तिब्बत' कहते हैं।

६५. आदि में एक जाति थी या अनेक? प्रश्न:आदि सृष्टि में एक ज़ाति थी वा अनेक ? **उत्तर** : एक मनुष्य जाति थी पश्चात् 'विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः' यह ऋग्वेद का वचन है, श्रेष्ठों का नाम आर्य्य, विद्वान् देव, और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए।

६६. आर्यों से पूर्व इस देश में कोई नहीं आया—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्य्यों के पूर्व इस देश में बसते थे क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

६७. **स्वदेशीय राज्य ही उत्तम है**—कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तरके आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा,न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है ।

६८. **सृष्टि और वेद की उत्पत्ति का समय**—एक अर्ब, छानवे क्रोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं, इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है, देख लीजिये ।

६९. **विद्या अविद्या का लक्षण**—जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्त्व स्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहलाती है अर्थात् कर्म उपासना अविद्या इसलिए है कि यह बाह्य और अन्तर क्रिया विशेष है, ज्ञान विशेष नहीं ।

७०.**मुक्ति क्या चीज है?** मुक्ति किसको कहते हैं ?(**उत्तर**) 'मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्याँ सा मुक्तिः' जिसमें छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है **प्रश्नः** किससे छूट जाना? **उत्तर**: जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं । (**प्रश्न**) किससे छूटने की इच्छा करते हैं ? (उत्तर) दुःख से । (**प्रश्न**)छूटकर किसको प्राप्त होते हैं और कहाँ रहते हैं ? (**उत्तर**) सुख को प्राप्त होते हैं और ब्रह्म में रहते हैं ।

७१. **मुक्ति के साधन**— जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्या भाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुख रूप फल को देने वाले सत्य भाषणादि धर्माचरण अवश्य करे जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे ।

७२. **मुक्ति में सूक्ष्म शरीर रहता है**-पाँच प्राण,पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि इन सतरह तत्वों का समुदाय 'सूक्ष्म शरीर' कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं एक भौतिक अर्थात् सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक। जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं। यह दूसरा और भौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है।

दशम समुल्लास

७३. **स्नानादि से नित्य शुद्धि करनी चाहिए**-नित्य स्नान वस्त्र, अन्न, पान स्थान सब शुद्ध रखे, क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच उतना करना योग्य है कि जिससे मल दुर्गन्ध दूर हो जाय।

७४. **विदेश यात्रा से धर्म नहीं बिगड़ता**–

(प्रश्न) आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न२ देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं? **(उत्तर)** यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रताकरनी सत्यभाषणादि आचरण करनाहै वह जहाँ कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्यावर्त में रहकर दुष्टाचार करेगा वही अधर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा।

७५. **मद्य माँस भक्षियों का सङ्ग न करे**—जो लोग माँस भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिये उनके सङ्ग करने से आर्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं।

७६. **रसोई किसके हाथ की बनी खावे ? प्रश्न :** द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावे वा शूद्र के हाथ को बनाई खावें ? **उत्तर :** शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्य पालन और पशुपालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें।

७७. **केवल खाने-पीने के एक होने से उन्नति नहीं हो सकती**

केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु तब तक बुरी बात नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते जब तक बढती के बदले हानि होती है।

७८. **आपस की फूट से विदेशियों का राज्य होता है—** विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य हाने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है

७९. **गौ रक्षा का अर्थ शास्त्र—**देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशोंमें बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं को बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे।

८०. **भोजन शुद्ध स्थान में करना चाहिए—प्रश्न :** चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ? **उत्तर :** जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दिखे वहाँ भोजन करना चाहिए परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े २ भी खाना पोना अत्यन्त उचित है।

एकादश समुल्लास

८१. आर्यकुल के चक्रवर्ती राजा—सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुल में ही हुए थे अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त, भरत सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चकवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं बैसे स्वायम्भवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

८२. सब देशों में विद्या आर्यावर्त से ही फैली है—जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।

८३. महाभारत के युद्ध ने देश को बड़ी हानि पहुँचाई—ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी अपनी पूर्वदशा में नहीं आया क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह !

८४. मूर्तियों से परमेश्वर का स्मरण नहीं होता—जब परमेश्वर निराकर सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियाँ कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्तियाँ बनती हैं, उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता !

८५. **दान सुपात्रों को देना चाहिए**—सुपात्रों को परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्रादि दान अवश्य करना उचित है। किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिए।

८६. **स्वदेश प्रेम**–भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं अपने माता पिता, पितामहादि के मार्ग के मार्ग को छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना इङ्गलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है ?

८७. **धर्म अधर्म की मोटी पहचान**–परोपकार करना धर्म और पर हानि करना अधर्म कहाता है।

८८. **पाप बिना भोगे नहीं छूटते**–एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रा से, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्थादि से, ईसाई लोग ईसा के विश्वास से, मुसलमान लोग 'तोबा:' करने से पाप का छूट जाना बिना भोग के मानते हैं। इससे पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है।

८९. **यज्ञोपवीत और शिखा धारण करना आवश्यक है**–जो विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाईयों के सदृश बन बैठना यह भी व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और 'तमगो' की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था।

९०. आर्यसमाज आर्यावर्त की उन्नति का कारण है—जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना अब भी पालन होता है आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं होसकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं।

९१. दूसरों के दोषों को देखने से पहले अपने दोषों को देखना चाहिए—बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष-देख निकाल के पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें।

९२. स्वर्ग और नरक करक की व्याख्या—स्वर्ग सुख-भोग और नरक दुःख भोग का नाम है।

९३. पशु मारकर होम करना और मृतकश्राद्ध, तर्पण वेदादि शास्त्रों में नहीं लिखा—पशु मार के होम करना वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं नहीं लिखा और मृतकों का श्राद्ध तर्पण करना कपोल-कल्पित है क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध होने से भागवतादि पुराण मतवालों का मत है, इसलिये इस बात का खण्डन अखण्डनीय है।

९४. वेदों में माँस खाना कहीं नहीं लिखा—जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है इस-लिये उनको राक्षस कहना उचित है परन्तु वेदों में कहीं माँस का खाना नहीं लिखा इसलिए इत्यादि मिथ्या बातों का पाप

उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के जाने सुने विना मन-मानी निन्दा की है निःसन्देह उनको लगेगा सच तो यह है कि जिन्होंने वेदों से विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविद्यारूपी अन्धकार में पड़के सुख के बदले दारुण दुःख जितना पावें उतना ही न्यून है। इसलिये मनुष्य मात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है।

बारहवां समुल्लास

९५. **कर्मानुसार फल दाता ईश्वर है**—जीव पूर्वोपार्जित कर्म ही से शरीर धारण कर लेता है ईश्वर का मानना व्यर्थ है **उत्तर :** जो केवल धर्म ही शरीर धारण में निमित्त हो, ईश्वर कारण न हो तो वह जीव बुरा जन्म कि जहाँ बहुत दुःख हो उसको धारण कभी न करे किन्तु सदा अच्छे-अच्छे जन्मधारण किया करे। जो कहो कि कर्म प्रतिबन्धक है तो भी जैसे चोर आपसे आके बन्दीगृह में नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता किन्तु राजा देता है, इसी प्रकार जीव को शरीरधारण कराने और उसके कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वर को तुम भी मानो।

९६. **दुष्टों को दण्ड देना भी दया ही है**—दुष्टों को दण्ड देना भी दया में गणनीय है, जो एक दुष्ट को दण्ड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त हो इसलिए वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय तो ठीक है कि सब प्राणियों के दुखःनाश और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कहाती है।

९७. **मुखपर पट्टी बाँधने से जीवों की हिंसा अधिक होती है** जब कोई मुख पर कपड़ा बाँधे तो उसका मुख का वायु रुक के नीचे वा पार्श्व और मौन समय में नासिका द्वारा इकट्ठा होकर वेग से निकलता है उससे उष्णता अधिक होकर जीवों को

विशेष पीड़ा जैनियों के मतानुसार पहुँचती होगी। देखो ! जैसे घर व कोठरी के सब दरवाजे बन्द किये वा परदे डाले जायें तो उसमें उष्णता विशेष होती है खुला रखने से उतनी नहीं होती वैसे मुख पर कपड़ा बांधने से उष्णता अधिक होती है। और खुला रखने से न्यून, वैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःख दायक हो और जब मुख बन्ध किया जाता है तब नासिका के छिद्रों से वायु रुक इकट्ठा होकर वेग से निकलता हुआ जीवों को अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा देखो ! जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख से फूंकता और कोई नली से तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नली का वायु इकट्ठा होने से अधिक बल से अग्नि में लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बाँधकर वायु को रोकने से नासिका द्वारा अतिवेग से निकल कर जीवों को अधिक दुख देता है इससे मुख पर पट्टी बाँधने वालों स नहीं बाँधने वाले धर्मात्मा हैं।

तेरहवां तथा चौदहवां समुल्लास

९८.मुर्दो के गाड़ने से संसार को हानि पहुँचती है उनका जलाना सबसे अच्छा हैं—मुर्दों के गाढ़ने से संसार की बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है। विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है × × × × × घी की आहुति देकर जलाना चाहिए। इस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है और जो दरिद्र हो बीस सेर से कम घी चित्ता में न डाले चाहे वह भीख मांगने वा जाति वाले के देने अथवा राजा से मिलने से प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करे और जो घृतादि किसी प्रकार भी न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का

जलाना उत्तम है क्योंकि एक विश्वाभर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं, भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबर के देखने से भय भी होता है इससे गाड़ना आदि सवथा निषिद्ध है।

६६. **कुरान खुदा का बनाया नहीं है**–मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह .कुरान .खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है। क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो 'आरम्भ साथ नाम अल्लाह के' ऐसा न कहता किन्तु 'आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के' ऐसा कहता !

जो .कुरान का .खुदा संसार का पालन करने हारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मतवाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करने हारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि 'काफ़िरों को क़तल करो' अर्थात् जो .कुरान और पै.गम्बर को न मानें वे काफ़िर हैं ऐसा क्यों कहता ! इसलिये .कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता।

१००. **महर्षि की कामना**—परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सबसे सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मत मतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।

❀

चौदह रतनों की पुस्तक

(सत्यार्थप्रकाश के मुख्य विषय)

तर्ज - हाँ जी चालो टंकारा ......

हाँ जी दयानन्द आए जी, हाँ हाँ जी दयानन्द आए जी ।
चौदह रतन की पुस्तक लाए जी, दयानन्द आए जी ।। टेक ।।

झूंठी बात को सच्ची जानी, सच्ची को झूंठी मानी ।
स्वर्ग लोक का ठेका लिया, पण्डे करते थे मन मानी ।
ऐसे समय में सत्या-सत्य का, बोध कराए जी ।।१।। दयानन्द ....

दस है पूरब आधे सुनलो, चार है उत्तर आधे जी ।
पाठ दसों में मंडन ज्यादा, चार में खण्डन ज्यादा जी ।
चौदह रतन का ग्रन्थ अनोखा, दयानन्द लाए जी ।।२।। दयानन्द ....

ईश्वर का निज नाम ओम् है, पहले में बतलाए हैं ।
गौणिक नाम प्रभु के इसमें, कितने ही बतलाए हैं ।
शताधिक नामों की व्याख्या, कर समझाए जी ।।३।। दयानन्द ....

भूत प्रेत और क्रूर ग्रहों का, पूरा है खण्डन किया ।
बच्चों को पाखण्डियों से, दूर रखें आदेश दिया ।
दूजे पाठ में अंधविश्वास को, दूर हटाए जी ।।४।। दयानन्द ....

ब्रह्मचर्य को जिसने खोया, जीवन भर वह रोया है ।
कैसी हो बच्चों की शिक्षा, बीज उसी का बोया है ।
पाठ तीन में आर्ष-अनार्ष ग्रन्थों को बताए जी ।।५।। दयानन्द ....

पच्चीस वर्ष का जब युवा हो, सोलह वर्ष की हो युवती ।
दोनों के गुण कर्म स्वभाव को, देख बनाना दम्पति ।
चौथे पाठ में विवाह गृहस्थ के, धर्म बताए जी ।।६।। दयानन्द ....

दादा-दादी बन जाए तब, वानप्रस्थ में जाना है ।
जब भी पूरा हो वैरागी, सन्यासी बन जाना है ।
पाठ पाँच में इन दोनों के, धर्म बताए जी ।। ७।। दयानन्द ....

राज धर्म की पूरी बातें, छट्ठे में बतलाई है ।
सातवे में ईश्वर और, वेद की बात बताई है ।
ईश्वर, जीवों की सत्ता को, अलग बताए जी ।।८।। दयानन्द ....

पाठ आठ में सृष्टि के, निर्माण का बोध कराया है ।
बनना, स्थिर रहना, बिगड़ना, इस का ज्ञान कराया है।
मानव की उत्पत्ति का, इतिहास बताए जी ।।९।। दयानन्द ....
विद्या-अविद्या किसको कहते, हमको ये बतलाया है ।
बन्धन क्या है ? मुक्ति क्या है ? पूरा खोल बताया है ।
कर्मों का फल पुनर्जन्म, नव्बे में बताए जी ।।१०।। दयानन्द ....
अनाचार-आचार की बांतें, दसवे में समझाई है ।
आहार और व्यवहार की बातें, हमको खोल बताई है ।
खाद्य-अखाद्य वस्तुओं का, भेद बताए जी ।।११।। दयानन्द ....
भारत ज्ञान विज्ञान से ऊंचा क्यों ? जग का उपहास हुआ ।
दुनिया का ये धर्म गुरू था, कैसे इस का हास हुआ ।
ग्यारहवे समुल्लास में, ये पूरा बताए जी ।।१२।। दयानन्द ....
वाममार्गी पापी जन का, ऋषि ने भंडा फोड़ दिया ।
कबीर पन्थी, वेदान्ती को, तर्क से फिर झंझोड़ दिया ।
मूरत की पूजा के सोलह, दोष गिनाए जी ।।१३।। दयानन्द ....
बारहवे में चार्वाक की, मिथ्या बात बताई है ।
जैन और बौद्ध मतों की, नास्तिकता दरशाई है।
इन के ही ग्रन्थों से इनके, दोष दिखाए जी ।।१४।। दयानन्द ....
तेरवे में ईसा मसीह के, चमत्कार हैं बतलाए ।
अन्धे देखें गूंगे बोलें, मुर्दे जीवित करवाए ।
बाइबिल की सब पोल खोलकर, पथ दर्शाए जी है ।।१५।। दयानन्द
चौदवे में मुस्लिम मत के गप्पोड़े बतलाए हैं ।
खुदा ताला और मोहम्मद जी के, चमत्कार बतलाए हैं ।
करके समीक्षा आयत की,मुख बन्द कराए जी ।।१६।। दयानन्द ....
दयानन्द का ग्रन्थ अनोखा, है सत्यार्थप्रकाश जी ।
ध्यान लगा कर पढ़ना इस को, होगा ज्ञान प्रकाश जी ।
कितने ही लोगों के भ्रम का, भूत भगाए जी ।।१७।। दयानन्द ....
वैदिक धर्म की ज्योति को, दुनिया भर में पहुँचाओ जी ।
जन-जन तक ये पोथी पहुंचे, ऐसी युक्ति लगाओ जी ।
सत्य धर्म को धर ना है, ये बात बताए जी ।।१८।। दयानन्द ....